Chapter-5

पंचम अध्याय

राजस्थान के श्रृंगारिक लोकगीतों में समाज और संस्कृति

मानव अपने मूल रूप में उदात्त, पवित्र है, किन्तु अन्तबाह्य जीवन की स्थितियां परिस्थितियां मानव को अपने ही सांचें में ढालने का अथक प्रयास करती है। इनमें शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों का मिला-जुला रूप होता है। जब मानवीय अन्तश्चेतना 'पशुत्व' से मुक्ति पाकर मनुष्यत्व की ओर अग्रसर होती है, तब 'संस्कृति' नाम की सत्ता अपने संस्कृत रूप में जीवन के आर-पार छा जाती है। किसी भी देश या काल की आत्मा उसकी संस्कृति है। 'संस्कृति शब्द की बहुव्यापकता की विशाल परिधि में जीवन के समस्त भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्य समाहित हैं। जिस देश की संस्कृति जितनी उदात्त होती है वह देश उतना ही महान् होता है। मानव के संस्कार संस्कृति को स्थायित्व प्रदान करते हैं। भारत विभिन्न संस्कृतियों का संगम-स्थल रहा है, किन्तु इस सांस्कृतिक देश को विभिन्न संस्कृतियों ने अपने नीचे दबा नहीं लिया, प्रत्येक का सुन्दर सार इसमें है। ऐसी महान् सांस्कृतिक परम्पराओं के देश,' भारत ' का यह प्रान्त ' राजस्थान ' अपनी उत्कृष्ट सांस्कृतिक निष्ठाओं से आपूरित है। इस सांस्कृतिक वैभव को श्रृंगारिक जीवन संबंधी लोकगीत दीर्घकाल से अपने में समेटे हुये है।

भारतीय नारी का सर्वोपरि भूषण उसका 'सुहाग' पति ही है। एक गीत में बनड़ा (पति) सारे आभूषण तो लाया ही है, किन्तु सिर का सुहाग रूप आभूषण वह स्वयं ही आ गया है। इस तरह पातिव्रत्य धर्म की निष्ठा को इन गीतों ने खूब उभारा है। प्रतीक्षित पति के लिये चौक सजवाये गये हैं - ' जगमग करो देखे चौक होय खुल्यां को म्हारा राज मां, जी म्हारा राज' दीवाली पर गोबर से लीपकर मोती पुरवाये हैं और आगत पति की आरती उतारी

गई है । पति की आरती स्वयं लज्जा के कारण नहीं उतार सकती है, इसलिए ननद को आरती उतारने के लिए कह रही है । इन सबके पीछे पावन भावनाओं का संभार है, इनमें राजस्थानी संस्कृति के संस्कार, रीति-नीति, शिष्टाचार भावात्मक रूप में सन्निहित हैं ।

पति-पत्नी का कोमलतम और स्नेहपूर्ण सूक्ष्म संबंध भी है । इन गीतों में वस्तुत: उन भावनाओं का काव्यात्मक और संगीतात्मक उल्लेख रहता है जो मनुष्य के एकनिष्ठ प्रेम को स्वीकार करते हैं । अत: जहां इन गीतों में एक ओर भावना-प्रबलता एवं कलात्मकता (संगीत) रहती है, वहां दूसरी ओर सामाजिक चेतना तथा आवश्यकता (समाजशास्त्र) की जिम्मेदारी भी रहती है । लोकगीत इसलिये कर्तव्य और उपयोगिता की कसौटी पर भी खरे उतरे हैं । वैवाहिक संबंधों की पवित्रता एवं उनके प्रेम की वैयक्तिक आकांक्षाओं का चित्रण बहू ने अपने सब गहनों की उपमा में परिवार के विभिन्न लोगों को ले लेती हैं । सास ने कहा बहू जरा अपने आभूषण तो पहिनकर मुझे दिखाओ । वधू ने उत्तर दिया कि सासूजी ! मेरे आभूषणों के बारे में क्यों चिंतित हो । देखो मैं इन लोगों के बीच में कितनी सुन्दर लगती हूं । मेरे श्वसुर-गढ के राजा हैं । सासू रत्न भंडार हैं । जेठजी बाजूबंद हैं । जेठाणी बाजूबंद की लूंब हैं । देवर हाथी दांत का चुड़ला है और देराणी उस चुड़ले के ऊपर वाली मजीठ है । मेरा पुत्र दीपक है । पुत्र वधू दीपक की लौ है । इस प्रकार सारे परिवार में सहज संबंधों को गाती है ।[१] राजस्थानी नारी इन संबंधों के साथ अपने उत्तरदायित्व का भी भान रखती है । अपनी कल्याणमयी भावनाओं का आरोपण वह नीम, आम, नींबू, पीपल आदि पर करती हैं । इन वृक्षों के प्रतीकात्मक गीतों में सुखी परिवार का ही चित्रण है । इन वृक्षों को तोड़ने से रोकती है क्योंकि ये परिवार के आनन्द एवं हर्ष के प्रतीक है । इनके चारों तरफ मक्खन की पाल, जिसमें दूध सींच-सींच कर इस वृक्ष

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या -९६

को बढ़ाया है । यही भाव इन गीतों में आता हैं । लेकिन ये गीत ही ``राजस्थानी स्त्रियों के लिये वेद हैं, उपनिषद् हैं, संस्कृति हैं, संस्कार हैं, समाज हैं, जीवन हैं, कला और काव्य हैं ।``[१]

सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन -

राजस्थान में भी पुरुष को जहाँ `राजाजी की चाकरी` के लिये प्रस्थान करना पड़ता है, वीरत्व को सार्थक करना पड़ता है, वहीं राजस्थान का कृषक जीवन धान भरे लहलहाते खेतों में कर्मवीर बन झूमता है । किसान राजस्थान का प्राण हैं । एक गीत में वियुक्त स्त्री उदयपुर की फौज में लड़ने गये अपने पति को राजा की बैठक छोड़ कर खेती का धन्धा करने को प्रेरित कर रही है ।[१]

लोकजीवन की दृष्टि में श्रम से बढ़कर अन्य कोई गौरव की वस्तु नहीं है । श्रम ने गीतों को पैदा किया तो लोकजीवन ने अपने गीतों में श्रम के गौरव का जी भर कर बखान किया है । मेहनत उसकी जिन्दगी का अपूर्व संगीत है । उसका अतुलनीय नृत्य है । उसकी सर्वोच्च कला है । उसका श्रेष्ठतम विज्ञान है ।[२] राजस्थानी नारी अपने घर वालों के प्रति आभार प्रदर्शित करती है । सुखी जीवन है, सुन्दर पति, खेत-खलिहान, उसका पति हल चलाता है, वह खाना पंहुचाती है, दोनों हंस हंस हिलमिल कर खाते हैं । प्रस्तुत गीत कृषक परिवार का सुन्दर चित्र खींचता है -

सासू - बहू म्हे चली खेत नै,
लीनी गंडासी हाथ । बणाई झूंपड़ी
सासूजी तो पूला काट्या,
कोई, म्हें काट्या सर अे पचास । बणाई झूंपड़ी

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या १००

१. श्री कोमल कोठारी, परम्परा मासिक पत्रिका के लेख से उद्धृत - पृ० १०५

२- वही " " "

ऊंटां - ऊंटां पूळा ढोया,
तो घर गाडां के मांय । बणाई झूंपड़ी
म्हारे परण्यो छाई तिरणी,
म्हारे देवरिये गूंथ्यो पाळ । बणाई झूंपड़ी
आ झूंपड़ी म्हारो माळियो,
कोई, आ झूंपड़ी म्हारो मैल । बणाई झूंपड़ी

लोकगीतों में भूगोल संबंधी विशद् सांगोपांग विवेचन न मिलने पर भी लोकमानस की भौगोलिक जानकारी प्राप्त होती है । बनास नदी, जोधपुर, जयपुर, बीकानेर, जैसलमेर, कोटा बूंदी, अजमेर, उदयपुर, टोंक, नरवरगढ़ तो इन लोकगीतों की स्वर-लहरियों के आरोह अवरोहों में खूब मिलेंगे । इसके अतिरिक्त दिल्ली, बनारस, इलाहाबाद को भी खूब गाया है । उदयपुर प्रकृति स्थली है तो बीकानेर सूखा । राजस्थानी कन्या ''बीकाणे मत देई म्हारा बाबल, सासरियो'' 'पगथली' 'ईंढूंणी' 'ओढंणी' घिस जायेगी और पगल्यां री मोजड़ी टूट जायेगी । इसके अतिरिक्त कौनसी वस्तु कहां की प्रसिद्ध है यह भी गीतों में वर्णित है । जयपुर का 'लैरिया' जोधपुर की 'चूंदड़ी' सांगानेर का 'साळू' 'बूंदी की फूंदी, कजली देश के हाथी, बीकानेर की मिश्री, समुद्र पार के मोती आदि आदि भौगोलिक ज्ञान को व्यक्त करते हैं ।

राजस्थानी वेशभूषा का आकर्षण विश्व भर को चुम्बक की तरह खींचता है । अस्सी कली के घाघरे, कांचली-कुर्ती, लहरिया, चीणटियो (चिनांशुक), पीळो, पोमचो (पुत्रवती माता के लिये) आदि सांस्कृतिक महत्व रखते हैं । चूनड़ी दक्षिणी चीर, झीना साळू, आदि राजस्थान के विशिष्ट वस्त्र हैं । काजल, सुरमा, मेंहदी, उसके सौभाग्य के चिन्ह हैं । राजस्थान में आभूषणों पर तो स्त्रियां धन को पानी की तरह बहाती हैं । गणगौर के व अन्य पर्वों के गीतों में इन आभूषणों की बहुलता मिलती है । पुरुष पगड़ी, साफा, धोती अंगरखा,

चूड़ीदार पजामा, अचकन आदि वस्त्र पहिनते हैं। आभूषण में मूंदड़ी (अंगूठी) विशिष्ट है। इसके अतिरिक्त लोकगीतों में `बींदराजा` या `फाग` खेलते पुरुष का वर्णन है। पुरुष दाढ़ी के लिये `साफे` में `कांगसिया` (कंघा) रखते हैं। ऊंट की सवारी विशेष प्रसिद्ध है अत: ऊंट तक के लिये राजस्थानी पत्नी मूल्यवान आभूषण तैयार करती हैं जिसे `गोरबंद` कहते हैं।

इन लोकगीतों में राजस्थानी जीवन के समृद्ध व दरिद्र दोनों पक्षों के चित्र प्राप्त होते हैं। काव्यरूढ़ियों ने चाहे वैभव को खूब चढ़ाया पर लोककल्पनाओं ने उन्हें गा-गाकर सन्तुष्टि भी प्राप्त की है, व अपनी यथार्थ स्थिति को भी खूब मार्मिकता से चित्रित किया है।

विभिन्न संस्कार -

जीवन की सम्पूर्ण यात्रा में विविध विधानों का समायोजन भारतीय संस्कृति की महती विशेषता है। हिन्दू समाज का इहलौकिक जीवन चार अवस्थाओं, चार आश्रमों एवं सोलह संस्कारों में विभाजित है। परन्तु कालान्तर में संस्कारों का पूर्व प्रचलित सविधि बंधन नहीं रहा है। अधिकांश व्यक्ति तो सोलह संस्कारों के नाम तक विस्मृत कर चुके हैं। परन्तु शास्त्रीय परम्परा के श्रद्धालुओं के घरों में आज भी काफी संस्कारों का विधान किया जाता है। लोक-परम्परा में कुछ संस्कार आज भी विद्यमान है।

यहां यह ज्ञातव्य है कि लोक-परम्परा ने वेद वर्णित कुछ संस्कारों के ग्रहण के साथ ही कुछ नये स्वनिर्मित संस्कारों का भी विधान करना आरम्भ कर दिया। लोक-परम्परा में ही प्रारम्भ होने वाले ये संस्कार प्रत्येक देश में अलग अलग प्रकार के हो सकते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक प्रदेश में वही संस्कार प्रचलित हो, जो प्रदेश विशेष की लोकपरम्परा में निहित हैं। उदाहरण के रूप में राजस्थान प्रदेश में

प्रचलित `ढूंढ`[१] के संस्कार को लिया जा सकता है ।

संसार के समस्त देशों में संस्कार की महत्ता स्वीकार्य है । हिन्दू-धर्म की मान्यता अनुसार प्रत्येक व्यक्ति जन्म से शूद्र होता है पर संस्कारों के विधान से उसे द्विज बनाया जाता है ।[२] उक्त मत को सार्थक मानते हुये प्रत्येक आर्य के लिये संस्कार-विधान की आवश्यकता के बारे में राजबली पाण्डेय लिखते हैं - `` यह सिद्धान्त भी प्रचलित था कि उत्पन्न होते समय प्रत्येक व्यक्ति शूद्र होता है अत: पूर्ण विकसित आर्य होने के लिये उसका संस्कार व परिमार्जन करना आवश्यक है ।``[३]

कालान्तर में वर्ण-व्यवस्था और आश्रम-व्यवस्था की जड़ें शनै: शनै: उखड़ती गई, उसी भांति संस्कार-संख्या में भी कमी होती गई । आधुनिक काल में आर्य-संस्कृति में प्रमुख रूपेण तीन महत्वपूर्ण संस्कारों (जन्म, विवाह और मृत्यु) को सम्पन्न किया जाता है । कुछ लोग मुण्डन-संस्कार एवं यज्ञोपवित संस्कार का भी समायोजन करते हैं । परन्तु इन तीनों संस्कारों का विधान एक सामाजिक आवश्यकता का बोध भी कराता है । इस संबंध में श्री श्यामचरण दुबे के विचार उल्लेखनीय हैं - `` मानव की प्राय: प्रत्येक संस्कृति में व्यक्ति की जीवन-यात्रा के विभिन्न संक्रमण कालों का विशेष महत्व होता है । जन्म, विवाह एवं मरण इस प्रकार की तीन मुख्य स्थितियां हैं जिनके आसपास मानव-समूह

---

१. `ढूंढ` - जिस बालक की ढूंढ की जाती है उसे गृह के मुख्य द्वार की देहली पर या आंगन(चौक) में बिठा दिया जाता है । द्वार के सामने कुछ लोग खड़े रहते हैं जो चंग-वादन करते रहते हैं । एक आदमी अपने हाथ में पकड़ी लकड़ी को द्वार के ऊपरी सिरे पर टिकाये रहता है, अन्य दो व्यक्ति उस टिकी लकड़ी पर दूसरी लकड़ियों से धीरे-धीरे चोट पंहुचाते रहते हैं और साथ में गीत भी गाते रहते हैं ।

२. जन्मना जायते शूद्र: संस्काराद् द्विज उच्यते ।

३. राजबली पाण्डेय, हिन्दु-संस्कार - पृ० २६ ।

विश्वासों, रीतिरिवाजों और व्यवहारों का ऐसा जटिल ताना-बाना बुन लेता है कि उनके वास्तविक स्वरूप को समझे बिना उस संस्कृति का पूर्ण चित्र प्राप्त नहीं किया जा सकता है । समाज संगठन का यह पक्ष मानव के उत्तरोत्तर परिवर्तित होने वाले उत्तरदायित्वों एवं कार्यों की दिशा निश्चित करता है ।[१] इसके अतिरिक्त इन संस्कारों के पीछे यह भी धारणा रही है कि मानव जीवन अनेक अमानुषिक प्रभावों से घिरा रहता है । अत: इन अशुभ प्रभावों के प्रतिकार हेतु संस्कारों का समायोजन आवश्यक है । राजस्थान में भी 'झडूला' (कुंतलराशि) बढ़ाने की पृष्ठभूमि यही प्रतीत होती है । यथावसर इसका विशद विवेचन किया जाएगा ।

इन प्रमुख तीन संस्कारों के विधान पर लोक में असंख्य गीत प्रचलित हैं । यदि तुलनात्मक दृष्टिकोण से देखा जाय तो ज्ञात होगा कि इन संस्कारों के विधान में जितना हाथ ब्राह्मणों का है, उतना और कहीं-कहीं उससे भी अधिक हाथ पारिवारिक ललनाओं का है । वेद-वर्णित विधि ब्राह्मणों का व्यापार है तो लोक प्रचलित मान्यताएं एवं अनुष्ठान नारी - समूह द्वारा सम्पन्न किये जाते है । गृहिणियों द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कृत्यों के साथ मिल कर लोकगीतों की मधुरिम मन-मोहक स्वर-लहरी मणिकांचन योग स्थापित कर देती है । लोकगीतों के स्वरायोजन से असंपृक्त रहने में संस्कार फीके फीके प्रतीत होते हैं । इन संस्कारों एवं लोकगीतों के अभिन्नत्व और अन्योन्याश्रितता की ओर श्री कोमल कोठारी ने इन शब्दों में इंगित किया है -" निस्सन्देह हमारे इन सद् संस्कारों के निर्माण में लोक-गीतों ने अपना योग दिया है । ये लोकगीत हमारे लोक-मानस के अचेतन संस्कारों के निर्माता है ।"[२] उक्त विवेचन से पूर्णत: स्पष्ट हो गया है कि सांस्कारिक विधान के साथ लोकगीतों का आयोजन भी अपेक्षित है । अत: अब हम विविध संस्कारों के सन्दर्भ में राजस्थानी लोकगीतों का मूल्यांकन करेंगे ।

---

१. श्यामचरण दुबे - मानव और संस्कृति, पृ० २५६ ।

२. श्री कोमल कोठारी - साहित्य,संगीत और कला - पृ० २६ ।

जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट कर दिया गया है कि आर्य संस्कृति में षोड्श संस्कारों की मान्यता रही है। राजस्थान में वर्तमान युग में प्रमुखतया तीन संस्कारों (जन्म, विवाह और मृत्यु) का विधान ही प्रचलित है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण संस्कृति में मुण्डन संस्कार (झडूला चढ़ाना) भी विद्यमान है। उच्च वर्ग में यज्ञोपवीत धारण करने पर संस्कारिक विधान सम्पन्न किया जाता है। मांसाहारी - जातियों में यज्ञोपवीत की प्रथा नहीं है। यज्ञोपवीत को राजस्थान मे जनोई, जिनोई आदि शब्दों से अभिहित किया जाता है। इन वैदिक संस्कारों के अतिरिक्त राजस्थान में एक और लौकिक संस्कार आयोजित किया जाता है, जिसे 'ढूंढ' के नाम से पुकारते हैं। इस संस्कार का विधान निश्चित रूप से होलिकोत्सव पर किया जाता है। अब हम संस्कारों के अनुरूप गीतों का विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

<u>जन्म संस्कार के अवसर पर गाये जाने वाले गीत</u> -

मानव योनि चौरासी लाख योनियों में सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। आत्मा भी मानव शरीर प्राप्ति हेतु लालायित रहती है। मानव योनि में जन्म लेना स्वयं आत्मा और जन्म के पश्चात् उसमें संबंध रखने वाले अन्य सामाजिक सदस्यों के लिये अतीव आल्हाद का विषय है। अत: नवजात के स्वागतार्थ विविध गानों और नृत्यों का परिजनो द्वारा आयोजन किया जाता है। राजप्रसादों में पुत्ररत्न के जन्म पर समारोह समायोजित होते थे। पुरजन नृत्य और गान के माध्यम से अपनी प्रसन्नता की अभिव्यक्ति करते थे। महर्षि वाल्मीकि ने श्रीराम के जन्मोत्सव पर गन्धर्वों और अप्सराओं तक के नाचने का उल्लेख आदि ग्रन्थ में किया है -

'जगु: कल च गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरो गणा: ।
देवदुन्दुभयो नेदु: पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत् ।।'[१]

इसी प्रकार कवि कुल गुरु कालिदास ने नृपति दिलीप के राजभवन में 'अज'

---

१. रामायण, बालकाण्ड, १८।१६

के उत्पन्न होने पर वेश्याओं द्वारा गाने का वर्णन किया है -

" सुखश्रवा मंगलतूर्यनिस्वना: प्रमोदनृत्यै सह वारयोषिताम् ।
न केवलं सद्मनि मागधीपते: पथि व्यजम्भन्त दिवौकसामपि ।"[1]

गोस्वामी तुलसीदास ने भी राम जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को 'मंगल' नाम से संबोधित किया है ।

" गावहिं मंगल मंजुल बानी ।
सुनि कलरव कलकंठ लजानी ।।"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि जन्म के अवसर पर गाने की परम्परा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है ।

जच्चारागी -

राजस्थान प्रदेश में भी शिशु जन्म के पूर्व एवं शिशु जन्म के पश्चात् बहुत सारे लोकगीत गाये जाते हैं । परन्तु इन सभी गीतों को राजस्थानी में "जच्चारागीत" और "जच्चावा' मंगल कहकर संबोधित किया जाता है । ~~कक्के~~ जच्चा के गीतों को साधारणतया शिशु जन्म के पूर्व और पश्चात भी गाया जाता है, परन्तु प्रमुख रूप से बालक के नामकरण के दिन इन सभी गीतों को गाया जाता है । नामकरण दिन प्रसूता स्त्री बालक को लेकर जच्चा-गृह से बाहर जाती है । शिशु को जन्म देने के बाद वह इसी दिन ही स्नान करके दूसरे कपड़े पहिनती है । इस दिन पर किये जाने वाले विधि-विधान को राजस्थानी में "सूरज पूजणों' कहा जाता है । माता बालक को लेकर घर के आंगन में बाजोट पर बैठती है । आंगन गोबर से लिपा-पूता होता है और उस पर खड़िया मिट्टी और गेरू के चित्र बने होते हैं । ब्राह्मण अग्नि प्रदीप्त करता है और मन्त्रोच्चारण करता है । इन मंत्रों में ही जन्मना शुद्र समझा जाने वाला बालक ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है, ऐसी मान्यता है । मन्त्रोच्चार के पश्चात् माता शिशु को अपने दोनों हाथों में थामे अग्नि-देव की परिक्रमा करती है । परिक्रमा की संख्या

---

१. रघुवंश, ३।१६

२. रामचरितमानस, बालकाण्ड ।

पांच और सात होती है। परिक्रमा के पश्चात् वह सूर्य भगवान को जल चढ़ाती है। इस दिन से पूर्व प्रसूता घर के किसी भी पात्र के हाथ नहीं लगाया करती है। उसके खाने पीने के बर्तन सब बर्तनों से विलग रखे जाते हैं। सूरज पूजा का अनुष्ठान शिशु के सातवें, नवें, पन्द्रहवें, इक्कीसवें या सताइसवें दिन सम्पन्न किया जाता है। शिशु जन्म के पन्द्रहवें दिन ``जलवा पूजन`` होता है। प्रसूता कुए की कुंकुम, तांदुल आदि से पूजा करती है। सूरज पूजा के दिन जच्चा के गीत गाये जाते हैं।

जच्चा के गीतों का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव गर्भिणी को सातवां महीना लगने पर होता है। प्रसविनी की गोद उसकी ननद सूखे मेवे और फलादि से भरती है। उस दिन के पश्चात् प्रसविनी प्रथम बालक के लिये अपने पीहर आ जाती है और उस दिन भी वही गीत गाये जाते हैं जो सूरज पूजा के दिन गाते हैं।

नारी जीवन की सार्थकता मातृ शक्ति प्राप्त करने में है। नि:संतान होना प्रत्येक ललना के लिये अभिशाप है। सन्तान प्राप्ति हेतु राजस्थानी लोकगीतों में विविध देवी-देवताओं का आह्वान किया जाता है, जिनमें भाग्य-विधात्री बैमाता, देवी, सूर्य, भैरव, सूर्यपत्नी रेणादे आदि प्रमुख हैं। उदाहरणार्थ राजस्थान का एक प्रसिद्ध लोकगीत प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमें सूर्य-पत्नी राणकदे से संतान प्राप्ति के लिये प्रार्थना की जाती है-

`` छींकां तो पड़ियां अे माता चूरमो अे
ठणके सिरांवणा मागण वालो नहीं अे माता राणक दे
म्हाने मांणस क्यांने सिरज्या
माथो जो बांधने पालणो नीं पोढ्या
सासू सुवावड़ नहीं, कीधी अे माता राणकदे
म्हांने मांणस क्यांने सिरज्या -
तुठ्या राणकदे पूत जो दीधो
अेक भोल मां ने दूजो खोल्यां भो राज
म्हांने मांणस भला ही सिरज्या।``[१]

---

१. राजस्थानी लोकगीत - संपादक लक्ष्मी कुमारी चूंडावत, पृ० ४

अपने इष्टदेव के प्रति खीझ है कि आपने हमें मनुष्य क्यों बनाया । कितना नैराश्य है । और फलस्वरुप गहरी सी आह निकली है जो जीवन की निरर्थकता को प्रकट कर रही है ।

गर्भिणी की इच्छा-पूर्ति यथाशक्य आवश्यक मानी जाती है जिसे हिन्दी में 'दोहद' कहते हैं और राजस्थानी में 'हूंसपूरणी' शब्द दोहद का समानार्थी है । राजस्थानी लोकगीतों में भी गर्भिणी द्वारा बेर, केर, घेवर, फली, मतीरा, नीम्बू आदि खाने की इच्छा व्यक्त की गई है । शिशु जन्म के सातवें दिन सूरज पूजा का अनुष्ठान होता है तो निम्न गीत गाते हैं । गीत में 'पीळो' का उल्लेख है । यद्यपि 'पीळो' राजस्थानी रमणी के लिये दाम्पत्य-प्रेम का प्रतीक है लेकिन सामाजिक दृष्टिकोण से पुत्र जन्म पर ही 'पीळो' ओढ़ना उचित माना जाता है जैसा कि निम्न गीत में वर्णित है -

गाढ़ा मारु म्हांने पीळो दो रंगाय
जेठाण्यां देराण्यां पैरे पीळे रा बेस
घणा रै ई पीळो लावज्यो जी म्हारा राज ।
देराण्यां जेठाण्यां जाया लाडल पूत
कोई थे घणा जाई धीवड़ी जी म्हारा राज ।

जन्म संस्कार संपादित करते समय गाये जाने वाले जच्चा के गीतों में प्रमुख रुप से पुत्र-प्राप्ति की इच्छा, उसके लिये विविध देवी देवताओं की मनोतियां मानना, पुत्र जन्म होने पर आनन्द, पीलो ओढ़ना आदि अनेकानेक बातों एवं परिस्थितियों का वर्णन देखने को मिलता है ।

झडूलो -

राजस्थान में जब शिशु एक या डेढ़ वर्ष की आयु का हो जाता है तो उसके 'बाल-केशों' को किसी देवी देवता को चढ़ाने की प्रथा है । अधिकांश जातियों में उस जाति विशेष के देवताओं को 'झडूला' चढ़ाया जाता है । कुछ लोग कुल-देवी या देवता को 'झडूला' चढ़ाते हैं । कुछ लोग पितरों और खेतपालों (क्षेत्रपालों) को झडूला चढ़ाते हैं । कभी कभी किसी दम्पति

के संतान जीवित नहीं रहती है तो वह दम्पत्ति प्रसव के कुछ मास पूर्व देव-विशेष को भावी शिशु का 'भडूला' चढ़ाने की 'बोलवा' (बाधा) बालते हैं। और जब शिशु जीवित रहकर कुछ उम्र (२-४ वर्ष) का हो जाता है तो उस देवता को 'भडूला' चढ़ाते हैं। कहीं कहीं 'भडूले' की कुन्तलराशि को कुए, बावड़ी या बेरी में डाल दिया जाता है या नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है।

'भडूला' चढ़ाते समय भी अनेक प्रकार के लोकगीत गाये जाते हैं। यह 'मुण्डन संस्कार' का ही लोक-प्रचलित रूप है। पर यहां यह स्मरणीय है कि इस अवसर पर गाये जाने वाले लोकगीत देवी या देवता विशेष से ही संबंधित होते हैं। ये लोकगीत बहुधा रातीजोगों में गाये जाने वाले होते हैं। इसका एक उदाहरण दृष्टव्य है।

सोने ने रूपै री माता मिंदरियौ
जिण में बिराजी माता करनला
धजा तौ फरूकै माता मोवणी
कोई नगारां री उड री हे धोर बिराजी माता करनला
माताजी रै मढ़ री तौ छिव हद सोवणी
कोई लख आवै ने लख जावै बिराजी माता करनला।
ले लो भडूलौ नारेलां री जोड़ रौ
कोई सजी ताजौ राख्या लाडल पूत बिराजी माता करनला।

जनेऊ -

राजस्थान में बहुत ही कम जातियों में जनेऊ धारण करने की प्रथा है। इस संस्कार का पौराणिक नाम 'यज्ञोपवित-संस्कार' है। राजस्थान में १२,१६ वर्ष के बालक को जनेऊ धारण करने में योग्य समझा जाता है। इस दिन कुल-गुरु मंत्रोच्चार के साथ बालक को सूत के धागों की सात लड़ी डोरी धारण करवाता है, जिसे जनेऊ कहा जाता है। इसके धारण करने वाले के लिये मांस मदिरा आदि का सेवन निषिद्ध माना जाता

है । कभी कभी मांसाहारी जातियों के व्यक्ति भी किसी साधु महात्मा के प्रवचनों से अभिभूत हो जनेऊ धारण करते हैं । उस दिन से वे भी मांस शराब को त्याग देते हैं । कुछ व्यक्ति रुग्णावस्था से मुक्ति पाने के लिये भी जनेऊ धारण करते हैं । ऐसी अवस्था में रोग के निदान के पश्चात् भी वे उसी देव को अपना आराध्य देव स्वीकारते हैं जिसके नाम की उन्होंने जनेऊ धारण की है । उदाहरण स्वरुप चारण जाति के व्यक्तियों की आराध्या देवी ``हिंगलाज `` है । अत: परस्पर मिलने के अवसर पर वे `` जै माताजी री`` कह कर अभिवादन करते हैं । जनेऊ ग्रहण करने के महत्व एवं कारणों पर प्रकाश डालने के पश्चात् हम इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों पर आते हैं । इन गीतों में प्रमुख रुप से धार्मिक भावों का उल्लेख रहता है । जनेऊ बनाने में काम आने वाले सूत का भी वर्णन रहता है । जनेऊ धारण कर लेने पर धारणकर्ता ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है, ऐसी मान्यता है । उसके लिये क्या ग्राह्य है ? और क्या त्याज्य है ? आदि की चर्चा की जाती है । उसके दैनिक जीवन चर्या कैसी होनी चाहिये ? यह भी निर्देश रहता है । यह एक उदाहरण स्वरुप प्रस्तुत है ।

गले जनेऊ लाडा पाटके री डोरी
भिक्षा पुरसै बहु सूरज जी री गोरी
गले जनेऊ लाडा पाटके री डोरी
भिक्षा पुरसै बहू बरमा जी री गोरी
भिक्षा पुरसै बहू मादेव जी री गोरी

इस प्रकार विविध देवी - देवताओं के नाम ले-लेकर गीत लम्बा किया जाता है ।

विवाह -

विवाह गार्हस्थ्य जीवन के भव्य भवन का प्रवेश-द्वार है । संसार की बर्बर जातियों से लेकर सभ्यातिसभ्य जातियों में वैवाहिक विधान सम्पन्न किये जाते हैं । यदि स्थूल रुप से विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि

संस्कार का अर्थ ही एक स्थिति से दूसरी स्थिति में प्रवेश पाने से है । इस दृष्टिकोण से भी विवाह का अर्थ ब्रह्मचर्याश्रम से गृहस्थाश्रम में प्रवेश के प्रसंग में लिया जा सकता है । विवाह दो हृदयों के प्रेम-पाश में बांधने का महत्कृत्य है । भारतीय संस्कृति में वर्णित ऋण-त्रय में से पितृ-ऋण से मुक्त होने के लिये भी विवाह करना अत्यावश्यक है क्योंकि संतानोत्पत्ति बिना पितृ-ऋण से उऋण होना नितान्त असंभव है । सारत: कहा जा सकता है कि सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक प्रत्येक दृष्टि से विवाह का अक्षुण्ण महत्व है । विवाह अत्यधिक उल्लासपूर्ण सम्पन्न किया जाने वाला सामाजिक अनुष्ठान है । इस अवसर पर सर्वत्र सुखी वातावरण छाया रहता है । प्रमुख तीन संस्कारों में से पुत्री उत्पन्न होने पर जन्म संस्कार मनाने में प्रसन्नता लुप्त-प्राय होती है, और मृत्यु-संस्कार पूर्णरूपेण दु:खमय ही होता है । केवल विवाह संस्कार ही सोत्साह सम्पन्न होता है । वर और वधू दोनों पक्षों के सदस्यों का मन मुदित रहता है ।``नैन्नीनाजु`` और `बींदराजा` के पुनीत मिलन से मिलने वाली अपार प्रसन्नता को अनेक गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है ।

सगाई विवाह की प्रथम सीढ़ी है । इस समय वधू का पिता वर पक्ष के लोगों से विवाह की बात पक्की कर लेता है । एक प्रकार से यह वधू का वर को `वाग्दान` करना ही है । इस अवसर पर कुछ जातियों में `टीका` लेने की प्रथा भी है । कन्या-पक्ष की ओर से वर के पिता को रोकड़ धनराशि देने को `टीका` कहते हैं । इस अवसर पर वधू का पिता एवं अन्य संबंधी अनेक मेवा मिश्री के थाल लाते हैं । वैवाहिक गीतों का सर्व-प्रथम प्रादुर्भाव सगाई के अवसर पर ही हो जाता है परन्तु इन गीतों का क्रमानुसार प्राकट्य विवाह तिथि के निश्चितीकरण अर्थात् `सावाफेलने` के दिन से होता है । सावा फेलने के दिन `बामोसा रो हुकमी बनो` सोत्साह श्वसुर द्वारा दिया जाने वाला नारियल ग्रहण कर विवाह की स्वीकृति दे देता है । `सावा फेलने`के पश्चात् वैवाहिक सत्कृत्यों का समारम्भ हो जाता है । भारतीय संस्कृति में प्रत्येक शुभ कार्य हेतु सर्व-प्रथम गणेश वंदना की जाती है । अत: राजस्थान में भी वैवाहिक कृत्यों के प्रारम्भ में गणेश-

वंदना की गई है । कुम्हार गजानन की मृणमयी मूर्ति लाता है । उसे घर में स्थापित किया जाता है । राजस्थानी में गणेश संबंधी गीतों को ` बिनायक` कहा जाता है । बिनायक को न्योता दिया गया है -

अेक पान तीसरौ सौपारी पांन डोड सौ
जी औ दी नी बिनायक जी नै निंवतौ
जी औ म्हारा कारज सुधारण बेगा आवजौ ।

विनायक स्थापन के पश्चात् वर को अपने घर और वधू को अपने घर `पाट बिठाते` है उस समय दुल्हे दुल्हिन से घी पिलाया जाता है । उसकी आरती की जाती है । आरती के अवसर पर गाये जाने वाले गीत यहां उद्धृत है -

संगतीदांन जी पूछै अे म्हारी आसिया रांनी
इतरै अवेलै सायघण सिध गिया ।
मेरु दांन जी रा रेवत दानजी पाट बिराजिया जी
आरती संजोवण सायबा घण गिया जी ।

इसके पश्चात् वर-वधू के अपने अपने घर रोज पीठी की जाती है । पीठी किन-किन चीजों से निर्मित होती है ? आदि बातों का वर्णन इन गीतों में मिलता है ।

म्हारी हल्दी रौ रंग सुरंग निपजै माळवै
मोलावै सागर बाई रा बाभोसा माताजी रै मन कोड घणा
वांरा माताजी चतुर सुजांण, केसर कैवटै
बनड़ा थे हो जी केसर जोग, हल्दी रंग चढ़ै ।

दुल्हे - दुल्हिन की साज-सज्जायें सेवरों का भी अपना स्थान है । मालिन उमंगपूर्वक सेवरे गूंथ कर लाई है । जिस रायजादी (बनड़ी) को डूलियां (गुड़ियां) खेलते समय देखा था, वही आज पुनः चित्त चढ़ गई । पूर्वराग के उद्दीपन का ऐसा अनूठा उदाहरण शायद ही कहीं मिले -

रायजादी ढूलियां खेलती
मोजायां मेला जीमतड़ां नै म्है देखिया
गोरे से पुणाचे चित्त गियो जी ।

दुल्हा सज धज कर तैयार हो गया । बाराती भी अपनी-अपनी तैयारी में तल्लीन हैं । इस समय गाई जाने वाली 'बिरदा' के माध्यम से दुल्हे के परिजनों को भी बारात में जाने के लिये तैयार होने को कहा गया है ।

घणा रे आंगण कवड़ली बीड़ाय
बिरदें ढालो ढोलियो ।
जठे पोढे तखतदांन जी रा सींव
ज्यानें सुखभर आई नींदड़ी
बनै रा दातासा थांरी निंदड़ली निंवार
थांरी बिरदां आई धूमती ।
आयोड़ां रा आणंद उछाव
मोत्यां बिरद बधावसां ।

वर-वधू को घी पिलाने के बाद उसके संबंधी प्रीति-भोज देते हैं । इन्हें 'बन्दोले' कहा जाता है । बन्दोले पर भोजन करते समय गीत गाते हैं जिसमें वर-वधू का परस्पर तुलनात्मक चित्रण विविध प्रतीकों के माध्यम से किया गया है -

बनड़ो म्हारो सांवणिये रो मेह, लाडल बनी ओ आभे री बीजली ।
बरसण लागो सांवणियें रो मेह, चमकण लागी आभे री बीजली
बनड़ो म्हारो डुगरियै रो मोर, बनड़ी ढलकत ढेलड़ी ।
बोलण लागो बांगा मांयलो मोर, बोलण लागी ढेलड़ी ।
बनड़ो म्हारो राय चम्पा रो फूल, लाडलड़ी अे केलू कांबड़ी
महकण लागो राय चम्पा रो फूल, लुकण लागी केलू कांबड़ी ।

बरात चढ़ने से पूर्व राजस्थान में कहीं-कहीं 'बन्दोली' निकलती है जिसमें वर-वधू अपने-अपने घर के बाहर सुसज्जित होकर बैठते है और सब गांव वाले

इष्ट-परिजन आते हैं और पैसे अवांरते (उतारते) हैं । ये अनुष्ठान प्रात: काल होता है और सायंकाल बारात चढ़ती है तब घोड़ी के गीत गूंजते हैं । घोड़ी की गति कुछ तेज ही है । वर का मन उत्कंठित है क्योंकि ''तेल-चढ़ी बनड़ी'' ऊभी बाट जो रही हैं । फिर भी दूल्हा पीछे पीछे मुड़मुड़ कर देखता है कि बारात में कौन कौन चल रहे हैं ? इसी भांति एक बार जगज्जननी सीता ने बाग से जाते समय श्री राम की छवि को देखने हेतु बार-बार मुड़कर पीछे देखा था ।

केसरियो बनो लुळ लुळ पाछलफोरे
जाणु म्हारी जांनड़ली वामोसा पधारे
वामोसा पधारे बने रे बिरद सुधारे

बारात दुल्हिन के यहां पंहुची है । सभी ओर से बधाइयां दी जा रही है । समधी परस्पर बाहों में भर-भर कर गले मिल रहे हैं । बारात का नाई वधू के वहां बधाई देने जाता है । आगे स्त्रियां गीत गाती है । यहां उल्लेखनिय है कि जिस दिन से वर-वधू को 'पाट बैठाते' है उसी दिन से 'बनड़ा' नाम से अभिहित किये जाने वाले गीत गाये जाते हैं । बनड़े के गीतों में जीवन में घटित होने वाली नाना प्रकार की परिस्थितियों के चित्र खींचे गये हैं । कहीं वर-वधू के अभिन्न प्रेम का सरस वर्णन मिलता है तो कहीं वधू-वर से प्रार्थना करती हैं कि मैं सास ननद से पूर्णत: तंग आ गई हूं अत: हमें इनसे अला हो जाना चाहिये । वर भावी पत्नी को सदेश प्रेषित कर रहा है कि हम समुद्र पार ठहरे हुये हैं अत: तुम अपने पिता को कहो कि वह जहाज भेजे । पर नवल बनी भी प्रत्युत्पन्नमति प्रतिभा सम्पन्न है । शीघ्र ही प्रत्युत्तर भेजती है कि मेरे पिता निर्धन है अत: आपही कोई इन्तजाम कर दीजिये । कई गीतों में यही 'नैनी नाजु' अपना सम्पूर्ण अस्तित्व अपने प्रियतम हेतु मिटा देना चाहती है । दाम्पत्य प्रेम का इससे उत्कृष्ट उदाहरण कहां मिलेगा ?

` फूल गुलाब रो हूवती आली जे रे पेच कूणगे पर रैती
तेल चंपेल रो हूवती मिजाजी रै बालां में रैती
रूमाल रेशम रो हूवती सारे दिन जेबलड़ी में रैती
मुदड़ी सोने री हूवती सारे दिन चिटू में रैती
मोचड़ी पगल्यां री हूवती आखे दिन पगल्यां में रैती ।

कैसी कोमल कल्पना है । पर अपने को निरस्तित्व करने वाली `बनी` अपने `बने` पर तो कुछ अधिकार रखना ही चाहती है । वह अपने प्राणप्रिय बने को अपना अविभाज्य अंग बना लेना चाहती है । उसे `बने` का पार्थक्य कदापि सह्य नहीं है ।

बना मेंदी सरीखा राचणा बना राखूं मुठड़ी मांय
बना सुरमे सरीखा लागणा, थाने राखूं पलकां रै मांय
बना सूरज जेड़ा फुठरा, राखूं फूलां छाई सेज में
बना मोती जेड़ा ऊजला, राखूं नथड़ी रै मांय ।

लोकगीत का उपमान विधान आभिजात्य साहित्य के उपमानों से कदापि कम नहीं है ।

बारात के साथ लाई गई `पहले` की सामग्री नाई के हाथ दुल्हन के वहां पंहुचाई गई । इस सामग्री में हींगलू, टीकी, चुड़ियां, मेंहदी, मजीठ आदि वस्तुओं के साथ ही आभूषण, कपड़े आदि हुआ करती है । `स्नेह मिलन` को `समेला` कहा जाता है । यहां समधी परस्पर अफीम, सुपारी, इलायची आदि की मनुहारें करते हैं । इस समय गाये जाने वाले गीतों में बारात की शोभा का वर्णन रहता है । साथ ही बारातियों में मजाक करने के भाव भी भरे रहते हैं -

सात सुपारी लाडा जिंगोड़ां रो सटको
कांणा खोड़ा जानी लायो कांई खायो गटको
मावड़ बिना आयो लाडा कांई खायो गटको
बूढ़ा ठाडा जांनी लायो कांई खायो गटको

'समेले' के पश्चात् दुल्हा तोरण पर जाता है। तोरण पर स्थित दूल्हे की काकी सासू एवं सास द्वारा आरती उतारी जाती है। तोरण के बाद दूल्हे को वधू के घर में लाकर माया के समक्ष बिठाया जाता है। यहीं पर वर एवं वधू का 'हथलेवा' जोड़ा जाता हैं। वहां से दोनों का आगमन लग्नमंडप में होता है। मंडप में दोनों विराजमान होते हैं। ब्राह्मण मन्त्रोच्चार करता है। फिर सात 'फेरे' होते है। कन्यादान, गऊदान का भी यही समय है। विवाह की विधि सम्पन्न करने के पश्चात् दूल्हा दुल्हिन जन-वासे में जाते है। इन सभी विधानों का विधान करते समय विविध गीत गाये जाते हैं। यहां एक एक गीत सभी का दृष्टव्य है -

चंवरी निर्माण का गीत -

सोने रुपै री चार खूंटियां घड़ावो
केसर गार घलावो ओ राज
पिचरंग रेसम री तांणो तणावो
अगर चन्नण री समध्यिां मंगावो
गावो घिरत मंगावो बत्तीसो मिलावो
पिचरंग गुलाल मंगावो ओ राज।

हथलेवो जोड़ते समय -

हाथ ज देवो म्हांरी राज सहेली लाज गहेली
हाथां सू हथलेवो जोड़ो ओ राज
कींकर देवूं ओ म्हारा राज जोसीजी राज पिरोयत जी
म्हाने म्हारा वाभोसा देसै ओ राज
वाभोसा ई देसै म्हारा माताजी ई देसैं

'फेरां' के समय गाया जाने वाला गीत -

पैलो तो फेरे बनड़ी वाभोसा री बेटी
दूजै तो फेरे बनड़ी काकोसा री भतीजी
इगमै तो फेरे बनड़ी बीरोसा री बैनड़
चौथे तो फेरे बनड़ी हुई रै पराई

कन्यादान के समय का गीत -

घरहर घरहर धरती धूजी
हुई है धरम री वेळा ओ राज
हस्तियां रा दांन बाई रा बाभोसा देसी
गायां रो दांन बाईरा काकोसा देसी
मौरां रो दांन बाई रा वीरोसा देसी
हीरां रा गैणला बाई रा माताजी देसी

चंवरी से उठते समय का गीत -

बनी रा बाभोसा थांरा ओरम्या संभाळ
ओरम्यां साजन रम गिया
रमिया रमिया तखत दान जी रा सींव
लाखीणी बनड़ी जीतीया -
जीत्या जीत्या बाभोसा रे परसाव
जोड़ी री बनड़ी जीतिया -
जीतोड़ा रा ढोल घुराय
लाखीणी लाडी जीतग्या ।

चंवरी से प्रस्थान करते समय का गीत -

मोरियो अे माय म्हांरे वीरां री बेनड़ नें माडै लियां जाय
किणजी रो सोवन मोरियो किणजी री ढळकत ढेल
बारठ राजा रो सोवन मोरियो, रतनू राजा री ढळकत ढेल ।

वहां से दूल्हा दुल्हिन जान के डेरे जाते हैं । स्त्रियों के कंठ से रात्रि का नीरव वातावरण मुखरित हो उठता है । इस समय राजस्थान का सुप्रसिद्ध लोकगीत 'जला' गाया जाता हैं ।[१]

मरण के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों का संबंध हमारे आलोच्य विषय के अनुकूल नहीं है अतः उनका विवेचन नहीं किया गया है ।

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या ८४

त्यौहार -

त्यौहारों का उद्देश्य हमारे जीवन में कुछ नवीनता लाना है । जो जाति जितने उत्साह से अपने त्यौहारों को मनाती है वह उतनी ही प्राणवान और सशक्त मानी जाती है । इस प्रकार त्यौहार हमारे जीवन में उत्साह और प्रसन्नता, सुख और मनोरंजन लाते हैं । लगभग सभी त्यौहारों में गाने, बजाने, हर्षोल्लास मनोविनोद रहते हैं अतएव वे उसमें संजीदगी देते हैं । इनके साथ किसी भी जाति की परम्परायें भी लगी हुई रहती हैं ।

त्यौहारों पर स्वच्छ और नये वस्त्र पहने जाते है और आभूषण धारण किये जाते हैं । इस प्रकार ये समृद्धि का ध्यान करवाते हैं । आनन्द और उल्लास से ही त्यौहारों की उत्पत्ति हुई है । खरीफ की फसल पक कर तैयार हुई और काटी जाने लगी । नये अन्न को खाया गया और दिवाली मनाई गई । रबी की फसल तैयार हुई और होली का महोत्सव मनाया गया । उसकी ज्वालाओं में गेहूं और जौ की बाली सेकी गई और खाई गई । ऋतु के सुहानेपन का अधिक आनन्द उठाने के लिये होली जैसे त्यौहारों की उत्पत्ति हुई । उन दिनों वसन्त की श्री-सम्पन्नता और चांदनी रात के वैभव से होली त्यौहार की आवश्यकता समझी गई और उसकी अवतारणा हुई । लोकगीतों और लोक नृत्यों ने उसे और भी आनन्द वैभव दिया । वसंतपंचमी का महत्व इसी दृष्टि से है कि जो जाड़ा जन-जन को सता रहा था, जिससे अंग-प्रत्यंग ठिठुर और जकड़ गये थे, जिन नसों में खून का प्रवाह मन्थरगति से होने लगा था वह अब तरल बनकर गति पकड़ रहा है और शरीर में स्फूर्ति प्रदान कर रहा है । इसी स्फूर्ति एवं आनन्द को लोग वसंतोत्सव के रूप में मुखरित करते हैं ।

तीज -

राजस्थान में यों तो सभी त्यौहार आनन्द और उल्लास से मनाये जाते हैं किन्तु तीज के त्यौहार की महिमा न्यारी ही है । राजस्थान के अधिकांश भागों में एक ही फसल होती है और वह भी वर्षाकाल की

फसल । अतएव तीज का महत्व यूं भी अन्य त्योहारों से बढ़ जाता है कि इस त्योहार पर अच्छी वर्षा की खुशी तथा श्रावण के आनन्ददायक वातावरण में इसका आयोजन होता है । अतएव नर-नारी पूरी मस्ती से इसे मनाते हैं । तीज पर घर-घर में गीत नृत्य होते हैं और सभी स्त्रियां प्रवास में गये हुये पतियों के घर आने की कामना करती हैं -

घर-घर चंगी गोरड़ी, गावे मंगलचार ।
कंथा ! मती चुकावजो, तीजां तणो तिंवार ।।

अर्थात् घर-घर सुन्दर स्त्रियां मंगल गीत गाती हैं । पतिदेव ! आप तीज का त्योहार मत चुकना और अवश्य ही घर लौट आना ।

मरुस्थलीय तीव्र गर्मी और धूल भरी भीषण आंधी में समस्त प्राणी और पेड़-पौधे त्रस्त हो जाते है । आस-पास के ताल-पोखर ही नहीं कुए भी सूख जाते हैं । अपनी प्यास बुझाने के लिये पशु-पक्षी ही नहीं मनुष्य भी जगह जगह भटकने लगते हैं । ऐसी कठिन अवस्था में जब आसमान काले बादलों से भर जाता हैं तो प्राणी-मात्र का मन मयूर नाच उठता है । कृषक हल सम्हाल कर खेतों की ओर चल पड़ते हैं । वर्षा की झड़ी लग जाती है और थोड़े ही दिनों में तालाब, कुए पानी से भर जाते हैं । खेतों में फसलों के अंकुर उग आते हैं और चारों ओर हरियाली ही हरियाली छा जाती है तो जनता में प्रसन्नता का पारावार नहीं रहता । नवीन आशाओं और प्यार भरी उमंगों में लोग नाच उठते हैं । फिर श्रावण माह में तीज का त्योहार आता है तो लोगों का उल्लास चरम सीमा पर पंहुच जाता है -

हरणी मन हरियालियां, उर हालियां उमंग ।
तीज परब रंग त्यारियां, सावण लायो संग ।

अर्थात् श्रावण महीना अपने साथ हिरनियों के मन में प्रसन्नता, कृषक मजदूरों के मन में उमंग और तीज - त्योहार की आनन्द से भरी हुई तैयारियां लेकर आया है ।

घन घोरां जोरां घटा, लोरां बरसत लाय ।
बीज न मांवे बादलां, रसिया तीज रमाय ।

अर्थात् रेतीले टीबों में अच्छी फसलें लहरा रही है, बादलों की घटायें जोरों से बरस रही है और बिजलियां चमकती हुई बादलों में नहीं समाती है । प्रियतम ऐसे सुखद समय में तीज का त्यौहार मनाओ ।

इन्द्र-धनस तणियो अजब, चातक धुन मन भाव ।
बीज न मावे बादलां, रसिया तीज रमाव ।।

अर्थात् अनोखा इन्द्रधनुष तना हुआ है और चातकों की मीठी ध्वनि मन को लुभा रही है । बिजलियां चमकती हुई बादलों में नहीं समाती । प्रिय ! ऐसे सुखद समय पर तीज का त्यौहार मनाओ ।

तीज के त्यौहार पर सभी पारिवारिक सम्बन्धी और प्रेमी मिल कर राग-रंग आयोजित करने की उत्कट अभिलाषा रखते हैं । पुराने समय में आवागमन के साधन सुलभ नहीं थे तब प्रेमी मार्ग की अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुये मिलन-सुख प्राप्त करते थे । मिलन की उत्सुकता में वे गहरी तेज बहती हुई, नदियां, ऊंची पर्वत श्रेणियां और घने-जंगल भी अपने प्राणों की बाजी लगाकर पार कर जाते थे ।

तीज पर नायिकायें अपने प्रेमियों की प्रतीक्षा करती हुई हृदय वेधी मार्मिक सदेशा पंहुचाती थी -

जे साहब न आवियो, सावण पेली तीज ।
बीजल तणो भबुकड़े, मूंध मरेसी खीज ।।

प्रियतम यदि तू श्रावण की पहली तीज पर नहीं आया तो यह मुग्धा आसमान में बिजली की चमक से ही दु:खी होकर मर जावेगी ।

इस तरह तीज त्यौहार का संयोग और वियोग दोनों दृष्टि से बड़ा महत्व है । जहां एक ओर हरी-भरी फसलों, कुए बावड़ी सर्वत्र वर्षा से

भरपूर हो, जनमानस परिश्रम से प्रेरणा ग्रहण करता हुआ आनन्द से उल्लसित हो पारस्परिक प्रेम के साथ अठखेलियां करता हो तो दूसरी ओर प्रिय विरह में व्याकुल नायिका के विरह को उद्दीप्त करने वाला सुख और दु:ख, संयोग-वियोग के मंजुल मेल का त्योहार है ।

बसंत और होली -

कड़कड़ाती सर्दी का अन्त होते ही राजस्थान में सुहावनी बयार बहने लगती है तो जड़ और ~~कककं~~ चेतन में नव जीवन का संचार हो जाता है । खेतों में हरी हरी फसलें लहराने लगती है और इसके साथ जनता का मन मयूर नाच उठता है । आनन्द और उल्लास से मस्त होकर देश के सभी प्रान्त नाच गान में लीन हो जाते हैं और राजस्थान भी राग-रंग से झूम उठता है । सुदूर मरुस्थलीय भागों, पहाड़ी, उपत्यकाओ और हरी भरी घाटियों में नृत्य तथा गीतों की गंगा बहने लगती है ।

राजस्थान में होली से गणगौर तक त्योहारों का लुभावना वातावरण बन जाता है । ऊंच नीच के भेदभाव और अपने दु:खों को भूलकर सभी लोग इन त्योहारो मे रुचिपूर्वक भाग लेते है । त्योहारों में सबसे अधिक उत्साह होली के अवसर पर दिखाई देता है । इस विषय में राजस्थान शैली के अनेक प्राचीन चित्र भी उपलब्ध हैं ।

इन त्योहारों पर पहिनने के लिए राजस्थान में कई प्रकार के रंग-बिरंगे वस्त्र तैयार किए जाते है जिन्हें फागणियां, पीलिया, केसरिया और बसन्तिया आदि कहा जाता है । मलमल की सफेद परत पर, किनारों पर चुन्दड़ी की लाल बन्धाई और बीच में बड़े बड़े लाल फूलों वाले वस्त्र को फागणिया कहा जाता है । पीले कपड़े पर बंधाई को पिलिया कहा जाता है और केसरिया रंग के कपड़ों पर बंधाई को केसरिया कहा जाता है । विविध रंगों की ब्रूश से छपाई कर भात (आकृतियां) बनाई जाती है तो उसे बसंतियां कहा जाता है । स्त्रियां ऐसी रंग-बिरंगी ओढनियां ओढ कर, पुरुष भी ऐसे रंगीन साफे व पगड़ियां बांध कर गांव के चौराहे पर रात

को गीत तथा नृत्य करते है तो दृश्य निराला हो जाता है ।

विरहिणी नायिका के लिए यह समय बहुत दूभर हो जाता है । लोक दोहे में इसका सुंदर विवेचन किया गया है -

फागण आज बसंत रूत, भंवर सुणो भरतार ।
परदेशां री चाकरी, चाले कौण गंवार ।।

प्रिय पति, सुनो बसन्त ऋतु और फाल्गुन मास में परदेश की नौकरी में कौन गंवार जाता है ?

फागण मास बसंत रूत, आयो जे न सुणेस ।
चाचर के मिस खेलती, होली झंपावेस ।।

प्रियतम ! यदि मैं आपको बसंत ऋतु के फाल्गुन मास में आया हुआ नहीं सुनूंगी तो चाचर के बहाने खेलती हुई आपके विरह में जलती हुई होली में जा गिरुंगी ।

तरत भरत, सूकत तरत, दादर मरत तुरंत ।
प्रीतम घर न देखतां, वैरण बणी बसन्त ।।

पेड़ों के पत्ते झर रहे हैं और तालाब सूखने लगे है । बहुत से मेंढक भी मरने लगे हैं । प्रियतम को घर नहीं देखते बसन्त ऋतु भी वैरण बनी है ।

बन जरिया हरिया हुवा, आवे आवे मोर ।
कूक-कूककर कोयली करती पिया बिना सोर ।।

बसन्त ऋतु में शीत से जले हुए बन भी हरे हो गए और वन में प्रत्येक आम के पेड़ पर मौर आने लगे किन्तु कोयल प्रियतम के बिना कूक कर शोर मचा रही है । राजस्थान में बसन्त पंचमी से ही लोग फाग खेलने तथा सामूहिक गीत व नृत्य का आयोजन करने लगते है । रात में खेती-बाड़ी और घर के काम से निवृत होकर स्त्री-पुरुष अपने बिरंगे वेष-भूषा में चौराहे पर एकत्रित हो जाते हैं । चारों ओर गीत गाती हुई टोलियां चौराहे पर एकत्रित हो जाती हैं । राजस्थान के आदिवासियो भीलों, गरासियो व कंजरो आदि में स्त्री व पुरुष मिलकर नाचते हैं ।

अन्य जातियों में बहुधा स्त्री व पुरुष अलग-अलग नाचते हैं व बसन्त ऋतु के नृत्यों में गींदड़, गैर और घूमर की प्रधानता रहती है । गैर और गींदड़ में पुरुष गोलाकार नाचते है । साथ में ढोल अथवा चंग बजती हैं । नृत्य के समय लोग हाथ में तलवारें, भाले व बन्दूकें आदि लिए हुए रहते हैं । श्रृंगारिक भावों के साथ ही वीर भावों का प्रदर्शन ब-गैर और गींदड़ नृत्य की विशेषता होती है । गैर के समय स्त्रियां अलग रह कर समूह में गीत गाती है । गींदड़ गैर के प्रकार का ही पुरुषों का समूह-नृत्य है और यह मुख्यत: शेखावटी में होता है । गैर मुख्यत: मेवाड़ व मारवाड़ में प्रचलित है ।

'घूमर' राजस्थानी महिलाओं का समूह नृत्य है । यह गीतों के साथ वृत्ताकार रूप में किया जाता है । घूमर में स्त्रियां नाचती हुई जब डांडियों को भी प्रयोग में लाती है तब इसको 'डांडियां री घूमर' कहा जाता है । घूमर नृत्य और गीत में राजस्थानी भाषा का स्वर माधुर्य, भावों की उत्कृष्टता, पद-संचालन, हाथ और मुंह की मुद्राएं, आभूषणों का सौन्दर्य तथा विभिन्न प्रकार के वस्त्रों की रंग-बिरंगी छटा सहज ही आकर्षक होती है ।

भीलों के घूमरा नृत्य में एक ही वृत्त के आधे भाग में स्त्रियां व आधे भाग में पुरुष होते है । गीतों की कड़ियां स्त्रियां व पुरुष बारी-२ से दोहराते है । भीलों का यह नृत्य रात-रात भर चलता है ।

होली के अवसर पर लोक नाट्यों के रूप में अनेक स्वांग भी आयोजित होते हैं । इन नाट्यों में बीकानेर व जैसलमेर की रमत, उदयपुर की ढोला मरवण और शेखावटी व भरतपुर के स्वांग प्रसिद्ध है । इन लोक-नृत्यों में स्त्रियों की भूमिकाएं पुरुषों द्वारा ही की जाती है ।

बसन्त-पंचमी, होली, धूलेटी, शीतला सप्तमी और गणगौर आदि त्यौहार के आयोजन में लौकिक मनोरंजन संबंधी भावनाओं के साथ ही धार्मिक विचारों की प्रधानता रहती है । मन्दिरों में भी ये त्यौहार बड़े उत्साह से मनाए जाते हैं ।

बसन्त ऋतु के इन त्योहारों में राजस्थान की वीरता, प्रेम भावना, भारतीय संस्कृति के प्रतीक अनेक परम्पराएं, कलात्मक आभूषणों व रंग - बिरंगे वस्त्रों की छटा, राजस्थानी काव्य, संगीत तथा नृत्य का माधुर्य सभी साकार हो उठते हैं । इन त्योहारों में लोग ऊंच-नीच की भावना को त्याग कर उत्साह से भाग लेते है । इनके द्वारा ही जनमानस में आनन्दोल्लास तथा नवीन स्फूर्ति का संचार होता है और वह कठोर श्रम व कर्तव्य निर्वाह के लिए तत्पर हो जाता है ।

गणगौर -

अविवाहिता कन्या मनोनुकूल वर प्राप्ति हेतु गौरी की पूजा करती है । गणगौर की पूजा के निश्चित दिन (चैत-शुक्ला तृतीया-चतुर्थी) से पन्द्रह दिन पूर्व ही बालिकाएं `लोटी` लेकर कुएं पर जाती है । वहां उस लोटे को मांज कर उसमें कुएं का स्वच्छ जल भरती है । दूर्वा के कुछ तृण एवं आक के फूल भी उसमें डालती है । वहां से वे `गौरी` के मंदिर पर आती है और गौरी की पूजा करती है । गौरी पूजन के दिन एक पीतल के बर्तन में दूर्वा तथा अन्य शस्य घास से `गवर` बनाई जाती है और उसे गहने भी पहनाये जाते हैं । इसे एक बालिका अपने सिर पर रखती है और अन्य बालिकाएं उसके पीछे पीछे चलती है । वे सभी घर-घर `गवर` को घुमाती है जहां गवर की पूजा गृहिणियों द्वारा की जाती है, और गौरी को प्रसाद चढ़ाया जाता है जिसे बाद में बालिकाएं बांट कर खा जाती है । इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में गौरी सौन्दर्य का चित्रण एवं गौरी से अनेक प्रकार से की जाने वाली याचनाओं का वर्णन रहता है । एक ऐसा गीत उद्धृत है -

`गवर गिणगौर माता खोल किंवाड़ी ए
बारै ऊभी तीजणियां थे कांई कांई मांगो ए
राज करन्ता वाभोसा मांगां मई घमोड़ती माता ए
कान्ह कंवरियौ बीरो मांगां, राई-सी भोजाई ए
काले घोड़े काको मांगां, काजल वाली काकी ए

मोटै घूंमालै मांमो मांगा, मादल्वाली मांमी अे
सांवल्यिो बेनोई मांगा, रातै चुड़लै बैन अे
धोड़ा खेलावण फूंफो मांगा, गादी खूंदन्तां भूवा अे ।

इसके अतिरिक्त गौरी पूजन के समय निम्न गीत भी बालिकाओं द्वारा गाया जाता है और उस समय गृह-लक्ष्मी गौरी की पूजा करती है ।

`म्हे आई अे डोड्यां रै बार, मई घमोड़ै माटला
घमोड़ै ईसरजी री नार, डीगा गोरा पातला
वां रै ओढ़ण है दिखणी रो चीर, अरीजरी रो गागरो
वां रै हिवड़ै है हीरां रो हार, गुल गुजरातण कांचली
वां रै हाथां है हसलां रा दांत, आगे सोवन गूजरी
अबै जागो ओ सोदरा बाई रा बीर, बारै ऊभी तीजणियां
थारी तीजणियां ने दो जी तीज, दो सिंघासण बैठणो
अब दीजो थे दीलड़ी रो राज, आधो मांडण मेड़तो
जठै निपजै कबड़ाली जवार, हरिया मूंग मंडोर रा
हरिया मूंगा री है दाल, गवर पूजण जावसां
म्हनै मोत्यां रा दस आखा दो, निरणी गवर जवारसां ।`

इसी अवसर पर राजस्थान भर में `घुड़लो` नामक प्रसिद्ध लोक-गीत गाया जाता है । गौरी पूजनार्थ निकले बालिकाओं के समूह को `घूड़लेखां` अपने शहर को ले भागा । इधर घटना का पता चलने पर जोधपुर नरेश सातलजी ने घुड़लेखां का पीछा किया और उसे मार बालिकाओं को छुड़ाया । उसके सिर को तीरों एवं भालों से बींध दिया था । अतः आज बालिकाएं छिद्र युक्त घट को अपने सिर पर रखकर इस प्रतीक से (उस घटना का बोध कराने हेतु) `घुड़लो` नामक गीत गाया करती हैं । इस मृतिका कलश में दीपक जलाकर भी रखा जाता है । इस तरह से गणगौर त्योहार बालिकाओं द्वारा मनाया जाता हैं ।

लोकगीतों में संगीत -

जनमानस की सामूहिक अभिव्यक्ति से काव्यात्मक एवं संगीतात्मक रूप प्रस्फुटित होता है वही लोकगीत की संज्ञा से अभिहित किया जाता है । ये सामूहिक संगीतात्मक अभिव्यक्तियां मौखिक परम्परा में रहती है । यदाकदा सर्व-साधारण इनका प्रयोग कर प्रमुदित होते हैं । इन लोकगीतों का निर्माण भी समूह द्वारा होता है और इनका प्रयोग भी समूह के लिये ही होता हैं । समूह के लिये का अर्थ है, कोई अपने मनोरंजन हेतु गाता है तो कोई दूसरों के मनोरंजन हेतु गाता है । अर्थात् लोकगीतों के स्वरूप में गानेवालों का प्रमुख स्थान है । यदि गायक की प्रमुखता को दृष्टिगत रखते हुये विचार किया जाय तो ज्ञात होता है कि लोकगीत गायकों को स्पष्टत: दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है ।

एक प्रकार के गायक वे है जो गायक होने के साथ ही साथ गीत के श्रोता भी है । ऐसे गायक किसी दूसरे श्रोता के लिये नहीं गाते हैं । कम शब्दों में इन्हें गायक-श्रोता नामकरण से अभिहित किया जा सकता है । यह दल अपने मनोविनोद के लिये ही गाता है । यह दल अवसर विशेष पर लोकगीतों का समायोजन करता है । इस बात को उदाहरण से अच्छी तरह समझा जा सकता है । विभिन्न अवसरों पर स्त्री-वर्ग द्वारा गाये जाने वाले गीत इसी वर्ग में स्वीकार्य है । उन गीतों को गानेवाली भी स्त्रियां ही हैं और सुनने वाली भी स्त्रियां ही हैं । कुछ अवसरों पर पुरुष समूह द्वारा भी गीत गाये जाते हैं (यथा होली पर गाये जाने वाले फाग) परन्तु यहां सर्वत्र एक प्रमुख बात हमें स्पष्टत: दिखाई देती है कि यह गायक समूह किसी श्रोता विशेष के लिये गीतों का आयोजन नहीं करता । इस समूह का उद्देश्य गीतों द्वारा स्व-मनोरंजन ही होता है ।

दूसरे प्रकार के गायक वे हैं जो अपने जीविकोपार्जन हेतु दूसरों के लिये गीत गाया करते हैं । इस वर्ग को हम गायक पृथक श्रोता पृथक नाम दे सकते हैं । इस वर्ग में पेशेवर गायकों को परिगणित किया जा सकता है । इन गायकों को लोकगीत पैतृक-सम्पत्ति के रूप में प्राप्त होते हैं । राजस्थान

में अनेक जातियां व्यवसायिक दृष्टिकोण से लोकगीत गाने का काम करती हैं। इन जातियों में प्रमुख है - लंगा, ढोली, जोगी, नट, भील (भोपा), मांगणियार, मिरासी, फदाली, कलावंत, हिंजड़ा और गढ़ी। इन गायकों के संबंध में यह ज्ञातव्य है कि इन समस्त जातियों की गायन शैली अपनी है। एक ही गीत की एक जाति का गायक एक प्रकार की लय व धुन से गाता है तो दूसरी जाति का गायक उसी गीत को दूसरे प्रकार की लय व धुन से गाएगा। कुछ गीतों की धुनों में थोड़ी सी समानता पाई जाती है। इसके अतिरिक्त इस वर्ग में परिगणित विभिन्न जातियों के अपने अपने लोक-वाद्य हैं। गीत गाते समय इन वाद्यों का प्रयोग करते हैं। यथा ढोली ढोल बजाते हुये गाता है, लंगा गीत के साथ सारंगी का प्रयोग करता है, जोगी तन्दूरे एवं पूंगी को प्रयोग में लाता है। गीत के साथ संगीत का प्रयोग इस वर्ग की प्रधान विशेषता है। पेशेवर गायकों और घर घर गीत गाने वाली औरतों की गायन शैली में भी बहुत अन्तर है। इस बात को राजस्थान के मूर्धन्य विद्वान श्री लालस ने भी स्वीकार किया है। `` जाति के पेशेवर इन गायकों की गायन शैली में और परिवार की गायन शैली में काफी अन्तर होता है।`` [१]

इनके संगीत में राजस्थानी लोक-संगीत की उन्मत्त अवस्था के दर्शन होते हैं। इन लोकगायकों को पैतृक परम्परा से ही गायन का अभ्यास करवाया जाता है। इन लोकगायकों की एक विशेषता यह भी है कि ये गीत गाते समय विभिन्न राग रागिनियों (जैसे- सोरठ, मांड, भैरवी, कहरवा आदि) का नाम लेकर गीत गाते हैं। पर यहां भी स्मरणीय है कि इन रागों का शास्त्रीय रागों से साम्य आवश्यक नहीं है। ये राग शास्त्रीय रागों से नामकरण में अवश्य समान होते हैं परन्तु स्वर-योजना में उनसे प्रायः अलग प्रकार के होते हैं। इसके साथ ही यह भी ध्यान रखने योग्य बात है कि इस वर्ग के गायक भी अवसरानुकूल गीतों को ही गाते हैं।

---

१. राजस्थानी सबद कोस (भूमिका राजस्थानी साहित्य का परिचय) पृ० २०५, प्रथम भाग।

लोक-नृत्य -

राजस्थान के अनेक श्रृंगारिक लोकगीतों के साथ लोक-नृत्य आयोजित किये जाते हैं । इन लोकगीतों और लोक-नृत्यों का परस्पर अन्योन्याश्रित संबंध रहता है । इन नृत्यों के साथ संबंधित श्रृंगारिक लोकगीत आवश्यक ही नहीं अनिवार्यत: गाये जाते हैं । इन गीतों की लय और ताल आदि नृत्य के सर्वथा अनुरूप ही होगी । लोक-नृत्य प्रारम्भ करते हैं तो इनसे संबंधित गीतों के बोल भी स्वत: फूट पड़ते हैं । इसी प्रकार नृत्य संबंधी कोई गीत प्रारम्भ किया जाता है तो उनके पैर नृत्य में थिरकने लगते हैं । और धीरे धीरे नृत्य अपना वास्तविक सम्पूर्ण रूप ग्रहण कर लेता है । लोक-नृत्य और लोकगीतों को एकाकार करने में लोकवाद्यों का विशेष योग रहता है । जिस प्रकार प्राचीन शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत गायन वादन और नृत्य- तीनों का समावेश होता है उसी प्रकार लोक-जीवन में लोकनृत्य, लोकगीत और लोकवाद्यों का समन्वित रूप दृष्टिगोचर होता है । लोकनृत्य, लोकगीत और लोकवाद्यों को अलग अलग देखना, उनका एकांगी अध्ययन ही कहा जायेगा ।

लोकजीवन में पारिवारिक उत्सव नृत्य आदि मनोविनोद के अवसर आते हैं तो स्वभाविक रूप में लोक-नृत्य होने लगते हैं । लोक-नृत्य की एक विशेषता यह है कि शास्त्रीय नृत्य की भांति इनका विधिवत्-शिक्षण नहीं होता । लोक-नृत्य इतने सरल होते हैं कि सामान्य अनुकरण में ही सीख लिये जाते है ।

" लोक-नृत्य वस्तुत: प्राकृतिक नृत्य है । लोक-जीवन में जहां भी भावुकता के क्षण आते है, वहीं उसके अनुकूल किसी न किसी प्रकार के नृत्य का रूप प्रकट होने लगता है । इन नृत्यों में कला तो स्वभावत: होती ही है, पर कलात्मक होने का चैतन्य नहीं होता । अत: आदिम और जंगली जातियों में यह नृत्य जितना सशक्त होता है, उतना अन्य जातियों में नहीं । इसका यह अर्थ नहीं कि अन्य क्षेत्रों अथवा जातियों में लोक-नृत्य

हो ही नहीं सकता । सभ्य से सभ्य जातियों में भी एक लोकमानस का अंश रहता है, अत: उसमें भी किन्हीं असावधान क्षणों में परम्परा के फलस्वरूप लोकनृत्य फूट पड़ते हैं । ये उतने सशक्त नहीं होते और कितने ही संशोधनों से मुक्त हो जाते हैं । लोक-नृत्यों का विषय जीवन-चक्र ही होता है । यौन संकेत, कृषि तथा सन्ततिवृद्धि, भूत-प्रेतनिवारण जादू-टोना, ऋतु आवाहन, विवाह, जन्म-मृत्यु - ये सभी किसी न किसी रूप में संकेतमुद्राओं अथवा प्रतीक अभिप्रायों से नृत्यों के द्वारा प्रकट होते रहते हैं । साधारण लोकनृत्य सामूहिक होते हैं, पर व्यक्तिनिष्ठ भी हो सकते है । जीवन और प्रकृति से अनिष्ठत: सम्बन्धित होने के कारण लोकनृत्यों का रूप किसी वर्ग के अपने व्यवसाय के अनुकूल हो जाता है । कृषकों का नृत्य, पशुपालकों से भिन्न हो जाता हैं और अहेरियों का कुछ और ही होगा । लोकनृत्य का जन्म तीन वासनाओं की प्रक्रियाओं से हुआ है - आकर्षक को उपलब्ध करने की चेष्टा से, अनाकर्षक से बचने की चेष्टा से तथा इन चेष्टाओं के लिए टोने के रूप में प्रत्येक नृत्य में किसी न किसी प्रकार के टोना-संकेत से । मेघ-वर्षा के लिये नृत्य किये जाते हैं । अति वर्षा हो तो उसे रोकने के लिये नृत्य विधान रहता है । देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिये नृत्य होते हैं । देवता का शरीर में आवाहन करने के लिये नृत्य होते हैं । फसल अच्छी हो, इसलिए नृत्य होते है । ऐसे टोने के नृत्य के साथ कोई न कोई टोटका या अनुष्ठान भी लगा रहता है । विवाह के अवसर पर भी ~~[illegible] कृत्य~~ अनुष्ठानिक नृत्य का विधान रहता है । शास्त्रीय नृत्य का मूल लोकनृत्य में रहता है । लोकनृत्य की उद्दामता को अनुशासित करके और उसे ऐसे सिद्धान्तों में बांधकर प्रस्तुत किया जाता है, जो उस आवेग को अभिप्राय की दृष्टि से सौन्दर्य उपलब्धि के एक स्तर पर दृढ़ कर देते हैं । लोक-नृत्य ऐसे किसी कृत्रिम सिद्धान्त की सीमाएं नहीं स्वीकार करता । [१]

---

१. हिन्दी साहित्य कोश -- सं० धीरेन्द्र वर्मा आदि - पृ० ७१०

राजस्थान के अधिकांश महत्वपूर्ण श्रृंगारिक लोकगीतों के साथ - डांडिया-नृत्य, घूमर और लूर नृत्य आयोजित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य लोक-नृत्य भी जनता में प्रसिद्ध है जिनका विवरण इस तरह से है -

डांडिया नाच -

यह नृत्य सभी जाति के लोग करते हैं। भील और कुम्हार ढाल और तलवार के साथ नाचते है। कहीं कहीं इसमें बीस पच्चीस आदमी शामिल होते हैं। १०-१५ आदमी नाना प्रकार की वेश-भूषा में एकत्रित होते हैं। ये स्वांग राजा, बनिया, सीता आदि के होते हैं। ये नृत्यकार गोलाकार खड़े होते हैं। गोल के बीच में ८-१० गायक, सितार बजाने वाला तथा ढोल बजाने वाला रहता है। गोल के मध्य बैठे लोग ही गीत गाते हैं। इसमें स्त्रियां भाग नहीं लेती हैं।

नर्तकों के हाथों में बेंत रहती है। कभी ये अपने से बायें वाले नर्तक की छड़ी से भिड़ाते हैं, कभी दाहिने वाले की छड़ी से पृथक पृथक भिड़ाते हैं, कभी एक साथ ही एक व्यक्ति दोनों हाथों के दण्डों को बाईं दिशा के व्यक्ति से फिर दाहिनी दिशा के व्यक्ति से भिड़ाता है।

डांडिया नृत्य बड़े-बड़े शहरों में या कसबों में मोहल्ले मोहल्ले में किया जाता है। नृत्य में भाग लेने वाले व्यक्तियों के दोस्त उनके ऊपर रुपये वारते हैं। इन एकत्रित रुपयों को या तो किसी गोठ-घूघरी में काम में लिया जाता है या किसी सार्वजनिक उपयोग में।

मारवाड़ में कहीं कहीं यह नृत्य होली के बाद प्रारम्भ किया जाता है। ये नृत्य मारवाड़ का प्रतिनिधि नृत्य है। ये नृत्य गुजरात के रास-नृत्य से बहुत मिलता जुलता है। प्रस्तुत गीत होली के दिनों में बड़ी मस्ती से डांडिया नृत्य के साथ गाया जाता है। इसमें मारवाड़ राज्य के वीरों पनदेशों की प्रशंसा बड़े ही भावपूर्ण शब्द में की गई है -

घूंसो बाजे रे महाराज --- थारो
घूंसो बाजे रे ।।टेक।।

महाराजा---कंवर कन्हैया, हुक्म दियो रे खेलो होती   घूंसो---
मिसल,जीवणी,चांपा कूंपा, जैता करण सूरा री ढाल । । घूंसो---
डावि रे मिसल, उदा मेड़तिया, जोधा,करयां र मरू रणथाल़ । घूंसो ---
आठ मीसल मरूधर रा माय र, इक,इक मय हजारां पाल़ । घूंसो ---
आऊवो आसोप तो माणक मूंगा, बगड़ी कनाणों रतनां री माल़ । घूंसो---
खींवसर खेरवो मोती मूंगिया, रीयां रायपुर हीरा री माल । घूंसो---
मुकन जेदेव गोरां जसधारी, धन दुणा राखियो अजमाल । घूंसो ---
होयी देह आसोप राजसी, जोरो लायो पाछी गुड़बाल़ । घूंसो ---
पचाण खींवकरण जैतो ने कूंपो, सेरे री फौज रोकियो बेहाल - घूंसो ---
जठीरें जावे जठीं फतह कर आवे बोभी हे फौज राठौड़ गुलाल । घूंसो ---
बांका बांका पेच राठोड़ों ने सोहे, पिचरंग पेच ढूंढाई भूपाल । घूंसो ---
कड़ा में किलंगी राठोड़ा ने फावे, मोरिया री पांख काछावा बाल । घूंसो---
लाख लाख वांरे तोप रहकला, अणगिण ऊंट रसाल काल़ । घूंसो ---

घूमर -

गणगौर और होली के अवसर पर स्त्रियों में नाचने गाने की प्रथा है । ये स्त्रियां अपने घरों में नाचती हैं । कई कई स्थानों में गणगौर के आगे अन्य मोहल्ले की स्त्रियां भी नाचती हैं । इन्हें इनाम भी दिया जाता हैं । श्री चांदमल ढढ्ढे की गणगौर में पिछले वर्ग की स्त्रियां जाकर नाचती है और गढ़ से निकलने वाली गणगौर में मिरासिने, ढोलने नाचती हैं । १

घूमर नृत्य का एक और प्रकार भी है जिसमें लड़कियां एक घेरे में खड़ी हो जाती है और अपने हाथों से जरा झुक कर ताली बजाती हुई नृत्य करती हैं और साथ में गाती भी जाती हैं । उसके साथ ही युगल रूप

---

१. स्थानीय नाम विशेष

एक दूसरे का कैंचीनुमा हाथ पकड़ती हैं और हाथ खींचते हुये अपने शरीर को साधती हुई चक्कर लगाती हैं। फिर अपनी पूर्व स्थिति में सम पर आ जाती हैं। इस तरह ये गीत गाते नृत्य करती है -

म्हारी घूमर छै नखराळी ए माय
गौरी घूमर रमनां म्हें जास्यां।
म्हारी आलीजा री बोली प्यारी लागी ए माय - - गौरी
म्हारी आलीजा री बोली मोत्यां तोली ए माय - - गौरी

यह नृत्य गुजरात का प्रसिद्ध लोक-नृत्य 'गरबा' नृत्य से बहुत साम्यता रखता है।

गींदड़ -

यह नृत्य शेखावटी में शौकिया तौर पर किया जाता है। इसमें करीब सभी जातियों के लोग भाग लेते है, ये होली के १५ दिन पूर्व किया जाता है और होली दहन के साथ समापन हो जाता है। चांदनी रात में इसकी शोभा और भी बढ़ जाती हे ओर ये कभी-कभी तो रात भर चलता रहता है। ये मारवाड़ का डांडिया नृत्य से मेल खाता है। इसमें भी लोग विभिन्न स्वांग रचते है और नृत्यकार डांडिया भिड़ाते नाचते हैं। इस लोक नृत्य में निम्न लोकगीत गाया जाता है -

जला रे म्हे तो थारा डेरा निरखण आई ओ,
म्हारी जोड़ी रा जला, मिरगानैणी रा जला,
म्हे तो थारा डेरा निरखण आई ओ जला।

झूमर नृत्य -

इसमें पुरुष एक वृत्त बना कर बैठ जाते है और स्त्रियां भी छोटे से झुंड में बैठ जाती है। पुरुष ढोलक, मंजीरा, झालर एकतारा वाद्य बजाते हैं। स्त्रियां एक पंक्ति गीत की गाती है

और पुरुष दूसरी पंक्ति गाते हैं । पहले पुरुष नृत्य करते हैं फिर फुंड में से उठकर ~~स्त्रियों~~ स्त्रियां नृत्य आरम्भ कर देती है । रात्रिभर यह नृत्य चलता रहता है और स्त्री और पुरुष बदलते रहते हैं ।

घूमरा नृत्य -

उत्सवों के अवसरों पर यह नृत्य सम्पन्न किया जाता है । यह भी मिश्रित नृत्य है जिसमें स्त्री-पुरुष भाग लेते हैं ।

कच्छी घोड़ी -

इस नृत्य में सरगड़े, कुम्हार, ढोली, भांभी आदि विशेष प्रवीण हैं । लकड़ी, बांस तथा खपच्चियों से घोड़ी बनाई जाती है और उसे रंग बिरंगे कपड़ों तथा कोरकिनारी से सजाकर अपने शरीर पर पहन कर बिल्कुल घोड़ी की तरह नृत्यकार नाचते है । इस नृत्य के साथ ढोल, नक्काड़े तथा मूंगल बजती है । शादीब्याह के अवसर पर सह नाच नाचा जाता है । नाचने वालों के शरीर का करतब बड़ा आकर्षक होता हैं । साथ में कुछ लोग तलवारें, भाले लेकर भी नाचते हैं । डीडवाना, परबतसर, कुचामण आदि की ओर इनके नाचनेवाले पाये जाते हैं । इस तरह ये प्रमुख लोक-नृत्य राजस्थान में प्रचलित हैं । इसके अलावा गैर, लूर, ढपनृत्य, टूंटिया, गोड़ी आदि नृत्य भी जो अवसरानुकूल प्रयुक्त किये जाते हैं ।

लोकगीतों में स्थानीय विशिष्टतायें -

राजस्थानी श्रृंगारिक लोकगीतों में स्थानीयता की दृष्टि से भी महत्व है। इसमें राजस्थानी समाज में विद्यमान अंध-विश्वासों, रीतिरिवाजों, प्रथाओं आदि का वर्णन मिलता है। यहां द्रौपदी को भी 'घूम घूमेरी घाघरो' पहनना पड़ता है, और दक्षिणी चीर ओढ़ना पड़ा है। लोकगीतों में वर्णित प्रत्येक वीर 'तन के पांचूं कपड़ा' करने का इच्छुक है। इन 'कपड़ों' में रामपुर का 'सेल्हा' भंवर बंदूक कटार, सौरठड़ी तलवार और 'बीजल सार' का भाला है। पंजाब प्रदेश की नायिका नौटंकी भी ऊंट पर चढ़ने की बात कहती है। पन्ना अपने पति का नाम इसलिये नहीं बताती क्योंकि यहां पति का नाम लेने का रिवाज नहीं है। मरुभूमि में पानी बहुत गहराई पर मिलता है। पानी की कमी की ओर इन पंक्तियों में संकेत किया गया है -

बना सात बज्यां पांणी गई
साढ़ी सोलह बज्यां घरे आईजी ओ
म्हारो ऊंडे कुवा रो पांणी ।

बाह्य-अलंकृति -

श्रृंगार भावना की अभिव्यक्ति के लिये नायक नायिकाओं के व्यक्तिगत अंग सौन्दर्य के अतिरिक्त ऐसे अनेक उपादान हैं जो नायक एवं नायिकाओं के बीच प्रेमोद्दीपन करने में अधिक योग देते हैं। इन विविध उपादानों के समुच्चय से ही काम की सहज जागृति एवं पुष्टि होती है। इन विविध उपादानों में उद्दीपन की दृष्टि से सबसे अधिक सबल उपादान नायक एवं नायिका की सौन्दर्य वृद्धि करने वाले आभरण, अनुलेपन, परिधान आदि हैं। लोक-कवियों ने नायिकाओं द्वारा प्रिय-आगमन की प्रसन्नता पर अथवा प्रिय-मिलन हेतु जाने की उत्कंठा में शरीर आभरण धारण करना, अनुलेपन करना तथा सुन्दर वेश परिधान पहनना वर्णित किया है। राजस्थानी श्रृंगारिक लोकगीतों में जो बाह्य अलंकृति वर्णन

मिलता है वह तत्कालीन राजस्थानी जीवन की एक स्पष्ट झांकी हमारे सम्मुख उपस्थित करता है । उस समय प्रचलित आभूषणों एवं परिधानों की एक दीर्घ सूची हमें ज्ञात होती है ।

आभूषण -

हिन्दी विश्व कोश में आभूषणों के चार भेद किये गये हैं ।[१] (१) आवेद्य (जो अंग में छिद्रकर पहिने जाते हैं),(२) बंधनीय (जो अंग पर बांध कर पहिने जाते हैं), (३) क्षेप्य (जिसमें अंग डालकर पहने जाते हैं) तथा (४) आरोप्य (जो लटका कर पहिने जाते हैं) । शब्द कल्पद्रुमकार ने भी आभरणों के यही चार भेद माने हैं ।[२]

शृंगारिक लोकगीतों में आभूषणों का वर्णन विभिन्न प्रकार से मिलता है । नायिका सुरतिसुख में लीन होकर अपने पति के साथ निद्रा में तल्लीन है परन्तु निद्रा में विघ्न डाले वाला मुर्गा कितना बुरा लगता है । उसे कैसे लालच दिये जा रहे है - यह भी सराहनीय है । इन सबके माध्यम से अपने आभूषणों की गणना कर देना भी जहां स्त्री-सुलभ, आभूषण प्रदर्शन प्रियता का उदाहरण है साथ ही तत्कालीन प्रचलित आभूषणों की सूचि भी प्राप्त करा देता है -

`` एक घड़ी म्हें तो मैमद पैरुं रखड़ी रै ओलै छिप बोल तौ रे
मुरगा किम बोल्यौ अधरात ।
क्यूं बोल्यों रे म्हांरा लूंण हरांमी,माराजा है पलक निंदालू रे
मुरगा क्यूं बोल्यो अधरात ।
अेक घड़ी म्हें तो फूंदणां पैरु घड़ियां रै ओले छिपरै तो
रे मुरगा क्यूं बोल्यो अधरात ।
एक घड़ी म्हें हांसल पैरुं बेसर रे ओलै छिपरै तो
क्यूं बोल्यो रे अधरात

---

१. हिन्दी विश्वकोश, प्रथम खंड, पृ० २५
२. शब्द कल्पद्रुम, भाग २, पृष्ट १७६ ।

लोकगीतों में प्रयुक्त होने वाले आभूषण इस तरह से हैं - मैंमद, रखड़ी, फूटणा, हांस, तिलड़ी, चुडलो, गजरा, भुजबंद, पायल, कन्दोरा, बिछिया, राजकंवर, लाडेसर, कंवरबाई, गजमोती, माठी, मादलू इत्यादि। इस प्रकार आभूषणों के चारों प्रकार श्रृंगारिक गीतों में उपलब्ध है।

परिधान -

वस्त्रों की विविधता में राजस्थानी वेशभूषा का अपना निजी वैशिष्ट्य है। `` अस्सी कली ' के घाघरे में लहराती हुई राजस्थानी महिला शताब्दियों से सामन्ती संस्कारों में डूबे हुये अपने प्रियतम की रखरिफावल करती चली आ रही है। राजस्थान के गांवों और शहरों में, खेत-खलिहानों, फुरमुटों, पंथों, पगडंडियों और पनघटों पर बाजूबंद और चुड़ले में मंढ़ी, ओढणी में लिपटी, कसीली कसूमल चोली और कसमस पायलों में रुनझुन महिलायें रसिक जनों के आकर्षण का केन्द्र बनी हुई हैं और वह राजस्थानी सरदार दाढ़ी मूछों में कसी ऊंची धोती और साफा, बंद गले के कोट या फूलते अंगरखे में जीवन के व्यवहारों में व्यस्त तथा परोक्ष में प्रेम कामना करता हुआ मिलेगा।''[१] उक्त कथन में राजस्थानी वेशभूषा का सुन्दर परिचय जनार्दन नागर ने कर दिया जो स्थानीय परिधानों का भावना के साथ कितना मंजुल मेल लिये हुये हैं इसका भी बोध करा देता है।

प्रसाधन या अनुलेपन सोलह श्रृंगार का ही प्रमुख अंग है। किन्तु सोलह श्रृंगार का क्रमबद्ध गीतों में कहीं उल्लेख नहीं है केवल मात्र ' सोलह श्रृंगार ' इतना ही उल्लेख उपलब्ध है।

---

१. शोध पत्रिका, भाग २, में प्रकाशित लेख के आधार पर